[2021] 1 उम. नि. प. 159

बी.बी.एम. इंटरप्राइजेज

बनाम

पश्चिमी बंगाल राज्य और एक अन्य

[2020 की सिविल अपील सं. 2834]

30 जुलाई, 2020

न्यायमूर्ति रोहिंटन फली नरीमन, न्यायमूर्ति नवीन सिन्हा और न्यायमूर्ति (सुश्री) इंदिरा बनर्जी

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 133 [सपठित माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34] – अपील – मध्यस्थ द्वारा पारित अधिनिर्णय – विहित आक्षेप के आधारों में से किसी भी आधार पर आक्षेप नहीं होना – आक्षेप खारिज होना – यदि, मध्यस्थ द्वारा कोई सकारण अधिनिर्णय पारित किया जाता है तो उसमें हस्तक्षेप मात्र उन्हीं आधारों पर किया जा सकता है जो माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 में विहित हैं अन्यथा नहीं ।

वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी के विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ लूथरा ने कठिन परिश्रम करके अभिलेखों जिनमें अधिनिर्णय सम्मिलित है, को हमारे समक्ष रखा, उन कतिपय कमियों को इंगित करने के अनुक्रम में जो उनके अनुसार, माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के मानकों के भीतर आता है, इसलिए, जिसके परिणामस्वरूप हमें उच्च न्यायालय द्वारा पारित उस निर्णय में विघ्न नहीं डालना चाहिए जिसमें मात्र मामले को वापस भेजा गया है और यह निर्देश दिया गया है कि मामले का निपटारा छह माह के भीतर किया जाए । इस मामले का इतिहास उतार-चढ़ाव वाला रहा है । एक अधिनिर्णय, विद्वान् मध्यस्थ द्वारा तारीख 16 सितम्बर, 2009 को किया गया था । कुल रु. 2,08,599,89/- की रकम के साथ पांच दावे

उनके समक्ष किए गए थे । तथापि, अंततोगत्वा अधिनिर्णय इसमें के अपीलार्थी के पक्ष में बिना ब्याज के खर्चे के एवज में रु. 2,67,350 + वाद कालीन ब्याज के रूप में रु. 1,17,77,080/- पर 15% + रु. 1,38,44,430 की सीमा तक अधिनिर्णय किया गया था । यदि उक्त रकम, असंबद्ध खर्चों सहित चार माह के भीतर संदत्त नहीं किया जाता है तो ब्याज रकम उच्चतर हो जाएगा और 18% तक ब्याज लगेगा । जब अधिनिर्णय को निष्पादन कराने के लिए लाया गया तो निष्पादक न्यायालय ने यह इंगित किया कि इसके आदेश की तारीख 11 फरवरी, 2010 तक, 120 दिनों की अवधि - जिसके परे किसी अधिनिर्णय को चुनौती नहीं दी जा सकती है - पहले ही समाप्त हो चुकी है और इसलिए, निष्पादन की कार्यवाही की गई । यह मात्र तभी हो सकता था जब तारीख 17 फरवरी, 2010 का आदेश आर.बी.आई. को सरकारी बैंक के खाते को कुर्क करने के पश्चात् अधिनिर्णीत रकम संवितरित करने का निर्देश दिया गया हो और इसके उत्तर में आर.बी.आई. ने 20 फरवरी, 2010 को यह कथन किया है कि ऐसे खाते में पर्याप्त निधि नहीं थी, उसके बाद उच्च न्यायालय ने तारीख 24 फरवरी, 2010 के आदेश द्वारा मामले को प्रेषित करते हुए, यह कथन किया है कि सरकार दो सप्ताह के भीतर डिक्री बकायों का 50% उस समय पर जमा करने की इच्छुक थी । इसलिए, इस प्रक्रम पर उच्च न्यायालय ने निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित तारीख 17 फरवरी, 2010 के आदेश को अपास्त कर दिया । इन कार्यवाहियों के पश्चात् ही प्रत्यर्थी जागरूक हुए और अधिनिर्णय को चुनौती देते हुए, तारीख 2 अप्रैल, 2010 को माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अधीन याचिका फाइल की । माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा मामले का निपटारे करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय मात्र यह कथन कर सकता है कि यद्यपि द्वितीय चक्र में यह प्रतीत नहीं होता है कि परिसीमा अवधि के मुद्दे पर तर्क दिया गया था, चूंकि खंड न्यायपीठ द्वारा नए सिरे से सुनवाई का आदेश तारीख 11 जनवरी, 2013 को ही दिया जा चुका है, इसलिए, इस मुद्दे पर भी न्यायालय उसी आधार पर कार्रवाई आरंभ कर सकता है । न्यायालय इस बात से संतुष्ट नहीं है कि परिसीमा अवधि के मुद्दे पर कोई उत्तर दिया गया है अन्यथा भी विद्वान् जिला न्यायाधीश के

आदेश का परिशीलन करने पर, न्यायालय का यह मत है कि प्रत्यर्थी द्वारा फाइल धारा 34 के अधीन याचिका का निपटारा करने के लिए पर्याप्त कारण दिया जा चुका था । न्यायालय उच्च न्यायालय के इस बात से सहमत नहीं है कि कोई कारण नहीं दिया गया है जिसके परिणामस्वरूप वापस भेजने का आदेश दिया जाना चाहिए । परिणामतः, इसलिए, आक्षेपित उच्च न्यायालय का निर्णय अपास्त किया जाता है और विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 22 दिसम्बर, 2016 के निर्णय की पुष्टि की जाती है । अंत में, विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ लूथरा ने ब्याज की दर कम करने के लिए अपील फाइल की है जो अधिनिर्णय समाप्त होने की तारीख से चार माह के पश्चात् 18% होगी । न्यायालय यह सोचता है कि न्याय के हित में यह अपेक्षित है कि 18% का ब्याज अपास्त किया जाए और यह कि प्रत्यर्थी 15% की दर से ब्याज का संदाय करे । आगे, उसने यह प्रार्थना की है कि अधिनिर्णय के अधीन अतिशेष रकम संदाय करने के लिए छह माह की अवधि मंजूर की जाए । न्यायालय यह सोचता है कि मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, तीन माह की अवधि युक्तियुक्त है । (पैरा 8 और 9)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2020 की सिविल अपील सं. 2834.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 133 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से — सर्वश्री सौरव अग्रवाल, प्रियंकर साहा, शरद कुमार सिंघानिया, अंशुमन चौधरी और (सुश्री) रश्मि सिंघानिया, अधिवक्तागण ।

प्रत्यर्थियों की ओर से — सर्वश्री सिद्धार्थ लूथरा, ज्येष्ठ अधिवक्ता, (सुश्री) मधुमिता भट्टाचार्जी, (सुश्री) श्रीजा चौधरी, सैफुद्दीन शैम्स, मोहम्मद शाकिब नारु, अधिवक्तागण ।

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आर. एफ. नरीमन ने दिया ।

न्या. नरीमन – इजाजत दी गई ।

2. हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को विस्तारपूर्वक सुना ।

3. प्रत्यर्थी के विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ लूथरा ने कठिन परिश्रम करके अभिलेखों जिनमें अधिनिर्णय सम्मिलित है, को हमारे समक्ष रखा, उन कतिपय कमियों को इंगित करने के अनुक्रम में जो उनके अनुसार, माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के मानकों के भीतर आता है, इसलिए, जिसके परिणामस्वरूप हमें उच्च न्यायालय द्वारा पारित उस निर्णय में विघ्न नहीं डालना चाहिए जिसमें मात्र मामले को वापस भेजा गया है और यह निर्देश दिया गया है कि मामले का निपटारा छह माह के भीतर किया जाए ।

4. इस मामले का इतिहास उतार-चढ़ाव वाला रहा है । एक अधिनिर्णय, विद्वान् मध्यस्थ द्वारा तारीख 16 सितम्बर, 2009 को किया गया था । कुल रु. 2,08,599,89/- की रकम के साथ पांच दावे उनके समक्ष किए गए थे । तथापि, अंततोगत्वा अधिनिर्णय इसमें के अपीलार्थी के पक्ष में बिना ब्याज के खर्चे के एवज में रु. 2,67,350 + वाद कालीन ब्याज के रूप में रु. 1,17,77,080/- पर 15% + रु. 1,38,44,430 की सीमा तक अधिनिर्णय किया गया था । यदि उक्त रकम, असंबद्ध खर्चों सहित चार माह के भीतर संदत्त नहीं किया जाता है तो ब्याज रकम उच्चतर हो जाएगा और 18% तक ब्याज लगेगा ।

5. जब अधिनिर्णय को निष्पादन कराने के लिए लाया गया तो निष्पादक न्यायालय ने यह इंगित किया कि इसके आदेश की तारीख 11 फरवरी, 2010 तक, 120 दिनों की अवधि - जिसके परे किसी अधिनिर्णय को चुनौती नहीं दी जा सकती है - पहले ही समाप्त हो चुकी है और इसलिए, निष्पादन की कार्यवाही की गई । यह मात्र तभी हो सकता था जब तारीख 17 फरवरी, 2010 का आदेश आर.बी.आई. को सरकारी बैंक के खाते को कुर्क करने के पश्चात् अधिनिर्णीत रकम संवितरित करने का निर्देश दिया गया हो और इसके उत्तर में आर.बी.आई. ने 20 फरवरी, 2010 को यह कथन किया है कि ऐसे खाते में पर्याप्त निधि नहीं थी, उसके बाद उच्च न्यायालय ने तारीख 24 फरवरी, 2010 के आदेश द्वारा मामले को प्रेषित करते हुए, यह कथन किया है कि सरकार दो सप्ताह के भीतर डिक्री बकायों का 50% उस समय पर जमा करने की इच्छुक थी । इसलिए, इस प्रक्रम पर उच्च न्यायालय ने निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित तारीख 17 फरवरी,

2010 के आदेश को अपास्त कर दिया । इन कार्यवाहियों के पश्चात् ही प्रत्यर्थी जागरूक हुए और अधिनिर्णय को चुनौती देते हुए, तारीख 2 अप्रैल, 2010 को माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अधीन याचिका फाइल की ।

6. मुकदमेबाजी के प्रथम चक्र में, धारा 34 के अधीन याचिका को विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा तारीख 22 मार्च, 2012 को खारिज कर दिया था, यह कथन करते हुए, कि 120 दिनों की अवधि समाप्त हो गई है और अतएव, इस प्रक्रम पर गुणागुणों पर सुनवाई करना अनुज्ञेय नहीं होगा । तथापि, तारीख 11 जनवरी, 2013 के आदेश द्वारा खंड न्यायपीठ ने इस आदेश को अपास्त कर दिया और मामले को नए सिरे से सुनवाई करने के लिए वापस भेज दिया ।

7. द्वितीय चक्र में विद्वान् जिला न्यायाधीश ने दोनों पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल की सुनवाई करने के पश्चात् तारीख 22 दिसम्बर, 2016 को एक आदेश पारित किया जो निम्नलिखित है :-

> "न्यायालय को मध्यस्थ के मतों और निर्वचनों के विरुद्ध अपना निर्वचन प्रतिस्थापित नहीं करना चाहिए । मध्यस्थ के निष्कर्षों को बिना किसी आपत्ति के स्वीकार किए जाने की अपेक्षा होती है क्योंकि न्यायालय के पास मध्यस्थों द्वारा निकाले गए तथ्य के निष्कर्ष पर सुनवाई करने की कोई शक्ति या अधिकारिता नहीं होती है । वर्तमान मामले में, जहां तक मैं यह महसूस करता हूं कि याची के विद्वान् अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों तथा माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अधीन याचिका से और न्यायालय के समक्ष इस बारे में प्रस्तुत दस्तावेजों की फोटो प्रतिलिपि कि याची ने तथ्य के निष्कर्षों को चुनौती दी है किन्तु, अभिलेखों से ऐसा कुछ नहीं निकलता है कि आक्षेपित अधिनिर्णय या तो विधि के निर्वचन के कारण या किसी अन्य साम्पार्श्विक पहलू के कारण प्रतिकूल है और परिणामस्वरूप, मध्यस्थ द्वारा विनिश्चय लिया गया है । आधार जिस पर अधिनिर्णय को चुनौती दी गई है, संपूर्णत: तथ्यात्मक मुद्दा है, जो किसी भी तरह से माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 में प्रगणित आधारों में से किसी भी आधार में नहीं आता है । उसका विनिश्चय अंतिम है जब तक कि अपने विनिश्चय पर

पहुंचने में, उसके द्वारा दिए गए कारण पूर्णतया प्रतिकूल नहीं है या अधिनिर्णय, विधि की गलत प्रतिपादना पर आधारित है । इस मामले में, विवाद्यक कार्य संविदा, इसके निष्पादन और संदाय अर्थात् दावे की रकम से उद्भूत हुआ है, वह पहलू पूर्णतया मध्यस्थ की इस अधिकारिता के भीतर आता है कि उसके निष्कर्ष में, माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम की धारा 34 के अधीन कार्यवाही में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है । भारत संघ **बनाम** कलिंगा कंस्ट्रक्शन कंपनी [ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 646] वाले मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह सुस्पष्टत: अभिनिर्धारित किया है कि न्यायालयों के लिए मध्यस्थ के अधिनिर्णय की पुन: परीक्षा और मध्यस्थ द्वारा विचारित साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करना खुला नहीं है, यह अभिनिर्धारित करते हुए कि मध्यस्थ द्वारा निकाला गया निष्कर्ष गलत है । यह भी सुस्थिर सिद्धांत है कि इस आधार पर भी चुनौती नहीं दी जा सकती है कि मध्यस्थ ने गलत निष्कर्ष निकाला है या तथ्यों और साक्ष्यों का समुचित तौर पर मूल्यांकन करने में असफल रहा है । [1994 (1) माध्यस्थम् एल. आर. 45 = ए. आई. आर. 2003 एन. ओ. सी. 156 राज.] वाले मामले में, दिए गए विनिश्चयाधार के अनुसार और माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम के उद्देश्य के अनुरूप न्यायालय की अधिकारिता निर्बंधित की गई है । नारायण प्रसाद लोहिया **बनाम** एन. कुंज कुमार लोहिया [(2002) 3 एस. सी. सी. 572] वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि उक्त अधिनियम के उद्देश्यों में से एक उद्देश्य, माध्यस्थम् प्रक्रिया में न्यायालयों की भूमिका को न्यूनतम करना है । ऐसा माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 5 में मिलता है और माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 5 में यह कहा गया है कि न्यायिक प्राधिकारियों को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए सिवाय जहां ऐसा करना अधिनियम में उपबंधित है । विधानमंडल का आशय यह है कि अधिनिर्णय में हस्तक्षेप को न्यूनतम किया जाना चाहिए । इसे मात्र माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अधीन ही चुनौती दी जा सकती है । पुनरावृत्ति होने की जोखिम को ध्यान में रखते हुए, मैं यह पुन: उल्लेख करना चाहता हूं कि इस याचिका में, अधिनिर्णय को चुनौती देने के लिए,

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अधीन कोई विद्यमान आधार नहीं है । अधिनिर्णय का परिशीलन करने पर मेरे नोटिस में यह आता है कि विद्वान् मध्यस्थ ने माध्यस्थम् की सुनवाई के समय पर सभी अभिवाकों/मुद्दों पर विचार किया है और ऐसा कुछ नहीं किया है जो सुस्पष्ट प्रक्रियात्मक कमी की कोटि में आ सकता है या विधि के मुद्दे पर कोई प्रकट त्रुटि है या कोई घोर अन्याय किया गया है । विद्वान् मध्यस्थ ने विस्तृत और सकारण आदेश देते हुए, सकारण अधिनिर्णय पारित किया है । इसलिए, ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जिससे अधिनिर्णय की सत्यनिष्ठा के बारे में संदेह किया जा सके या यह कि मध्यस्थ पक्षपातपूर्ण था क्योंकि मध्यस्थ के पास ठेकेदार के बढ़ोतरी दावे के हक के प्रश्न को विनिश्चय करने की अधिकारिता और प्राधिकार था । मैं [2003 (2) माध्यस्थम् एल. आर. 280 (डीबी)] वाले मामले में, अपनाए गए इस मत को समर्थन देता हूं, इसलिए, अधिनिर्णय में हस्तक्षेप करना अपेक्षित नहीं है ।"

8. विद्वान् जिला न्यायाधीश के आदेश द्वारा तारीख 1 मार्च, 2019 के आक्षेपित आदेश को अपास्त कर दिया गया, यह कथन करते हुए कि :-

"यह उपधारणा करते हुए भी कि अधिनिर्णय, माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के असंशोधित उपबंधों के आधार पर आक्षेप करने योग्य था, फिर भी न्यायालय यह प्रत्याशा करता है कि अधिनिर्णय पर आक्षेप के गुणागुणों पर कुछ चर्चा हुई होगी और न कि अधिनिर्णय के तकनीकी अभिपुष्टि पर, साधारणतया यह कथन करते हुए कि अधिनिर्णय, अधिनियम, 1996 की धारा 34 में परिगणित चुनौती के आधारों में से किसी भी आधार के भीतर नहीं आता है । विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने यह कारण उपदर्शित नहीं किया है कि क्यों अधिनिर्णय, माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अधीन आक्षेप करने योग्य नहीं है ।"

ऐसा अभिनिर्धारित करते हुए, मामले को छह माह के भीतर निपटाने के लिए वापस भेजा गया था । इस बात पर रोक लगाई गई कि सभी प्रकार से मंजूर की गई सुनवाई जारी रहेगी । इन तथ्यों की उपधारणा से यह

दर्शित होता है कि मामले पर विचार किया गया था और पहले ही दो बार विचार के लिए रखा जा चुका था । हम मात्र यह कथन कर सकते हैं कि यद्यपि द्वितीय चक्र में यह प्रतीत नहीं होता है कि परिसीमा अवधि के मुद्दे पर तर्क दिया गया था, चूंकि खंड न्यायपीठ द्वारा नए सिरे से सुनवाई का आदेश तारीख 11 जनवरी, 2013 को ही दिया जा चुका है, इसलिए, इस मुद्दे पर भी न्यायालय उसी आधार पर कार्रवाई आरंभ कर सकता है । हम इस बात से संतुष्ट नहीं हैं कि परिसीमा अवधि के मुद्दे पर कोई उत्तर दिया गया है अन्यथा भी विद्वान् जिला न्यायाधीश के आदेश का परिशीलन करने पर, हमारा यह मत है कि प्रत्यर्थी द्वारा फाइल धारा 34 के अधीन याचिका का निपटारा करने के लिए पर्याप्त कारण दिया जा चुका था । हम उच्च न्यायालय के इस बात से सहमत नहीं है कि कोई कारण नहीं दिया गया है जिसके परिणामस्वरूप वापस भेजने का आदेश दिया जाना चाहिए । परिणामतः, इसलिए, आक्षेपित उच्च न्यायालय का निर्णय अपास्त किया जाता है और विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 22 दिसम्बर, 2016 के निर्णय की पुष्टि की जाती है ।

9. अंत में, विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ लूथरा ने ब्याज की दर कम करने के लिए अपील फाइल की है जो अधिनिर्णय समाप्त होने की तारीख से चार माह के पश्चात् 18% होगी । हम, यह सोचते हैं कि न्याय के हित में यह अपेक्षित है कि 18% का ब्याज अपास्त किया जाए और यह कि प्रत्यर्थी 15% की दर से ब्याज का संदाय करे । आगे, उसने यह प्रार्थना की है कि अधिनिर्णय के अधीन अतिशेष रकम संदाय करने के लिए छह माह की अवधि मंजूर की जाए । हम यह सोचते हैं कि मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, तीन माह की अवधि युक्तियुक्त है ।

10. तद्नुसार, अपीलें निपटाई जाती हैं ।

अपीलें निपटाई गईं ।

क.